शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (499-503) April - June 2019

प्राचीन भारतीय योग एवं आध्यात्मिक मनः चिकित्सा

श्रद्धा सोलंकी
शोधार्थी, योग विज्ञान विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर म.प्र.
Email: namdeo.shraddha@gmail.com

सारांश

वर्तमान युग समस्याओं से घिरा हुआ है तथा यह समस्यायें अनेक मानसिक रोगों को उत्पन्न करती हैं। यहां यह कहना उचित होगा कि मानसिक रोग असीमित आकांक्षाओं, इच्छाओं व तृष्णाओं का फलीभूत रूप है जिसका उपचार आधुनिक विज्ञान ढूढ़नें का प्रयास तो कर ही रहा है वरन् प्राचीन शास्त्रों जैसे ***अथर्वेद*** *में मनः चिकित्सा का वर्णन एवं अनेक विधियां जगह–जगह पर व्याप्त हैं जो कि भारतीय पद्धति में अनेकानेक वर्षों से प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रयोग में लायी जा रही हैं जैसे* ***मंत्रविधा, संकल्प, सादेश*** *इत्यादि। आयुर्विज्ञान भी मनोरोग के कारण* ***प्रज्ञापराध, असात्म्योन्द्रिया, संयोग*** *व* ***परिणाम*** *मानते हुये आध्यात्मिक प्रगति की ओर ध्यान केन्द्रित करता है।*

योग शास्त्रों में पंतजलि जी ने ''चित्तवृत्ति निरोधः'' कहकर सम्पूर्ण चिकित्सा के लिये चित्त की वृत्ति का निरोध आवश्यक बताया है तथा मन की व्याधियों एवं उपचार की विवेचना सूत्रों के रूप में की है। यम नियम आदि आष्टांग मार्ग को अपनाने से मन के दोष ही दूर नहीं होते वरन् सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास भी संभव बनाया जा सकता है इस हेतु कहा गया है –

मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनात् चित्तप्रसादनम्।।
प.यो.सू.–1/33।।

मनः शास्त्र का विश्लेषण यह दर्शाता है कि मनः रोगों को जड़ से खत्म करने हेतु उनके कारणों को समाप्त करने की आवश्यकता है इस हेतु योग एक सम्पूर्ण वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक पद्धति है।

प्रस्तावना

मनः स्थिति परिस्थितियों की जन्मदात्री है। मनुष्य के सुख–दुख, विकास अथवा पतन के लिये मुख्यतः वही जिम्मेदार है। परिस्थितियों की अपनी स्वतंत्र सत्ता तो है पर मनुष्य की प्रगति अवगति में उनकी नगण्य भूमिका है। मूलतः कारण आंतरिक स्थिति ही होती है। प्रगति की आकांक्षा रखने वालों को सर्वप्रथम मन को ही समझाना एवं नियंत्रित करना होता है। यह एक घोड़े की तरह है जो अनगढ़ होने पर परेशान करता है तथा विकास का मार्ग अवरूद्ध होता है तथा सुगढ़ता प्राप्त होने पर सधे घोड़े के समान इच्छाओं, आकांक्षाओं का सही नियोजन तथा पूर्ण मनोयोग का परिचायक बनता है।

मनः शास्त्र का विश्लेषण यह दर्शाता है कि मनः रोगों का कारण असीमित आकांक्षायें एवं इच्छायें भी हैं जिसके कारण व्यक्तित्व बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। अतः मनः चिकित्सा

की अत्याधिक आवश्यकता महसूस होती है। मनः चिकित्सा की चर्चा के पूर्व मनोरोगों के मूल कारण पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

आधुनिक व प्राचीन मतों के अनुसार मनोरोगों का कारण :

आधुनिक मनोविज्ञान, मनोरोगों के कारणों पर प्रमुखतः तीन आधार पर विचार करते हैं।

1. जैविक कारण
2. मनोवैज्ञानिक कारण
3. सामाजिक कारण

इनके अन्तर्गत व्यक्ति का दोषपूर्ण विकास, पारिवारिक वातावरण, व्यक्तित्व का समायोजन एवं इच्छायें आपूर्ति आदि सभी पहलू आते हैं।

फ्रायड के विचारानुसार – अचेतन में दमित समाज द्वारा अस्वीकृत शक्तियां जब उभरकर चेतन में आ जाती है तव अहम के नियंत्रण के बाहर हो जाती हैं तो मनोरोग का जन्म होता है। अर्थात्–अहम् द्वारा इदम् एवं परम अहम की शक्तियों के नियंत्रण एवं सामंजस्य की अक्षमता मनोरोगों के मूल कारण है।

आयुर्विज्ञान में मनोरोगों के मूल कारण

आयुर्विज्ञान मनोरोगों के कारणों में **प्रज्ञापराध, असात्म्योन्द्रिया, संयोग** व **परिणाम** की चर्चा करता है। यहां प्रज्ञापराध से तात्पर्य अज्ञानता व दुर्जनता है। प्रज्ञा के विपरीत अनुचित चिन्तन ही प्रज्ञा अपराध है जिसके कारण ''धी'' विभ्रंश व विकृत हो जाती है और मनुष्य उचित अनुचित का भेद भूल जाता है। 'धषति' (धैर्य) मन की नियंत्रक शक्ति है। प्रज्ञा अपराध के परिणाम स्वरूप धृति भ्रंश होने पर मनुष्य अवांछनीय कार्य में प्रवृत्त होने लगता है।

आसत्म्योन्द्रियार्थ संयोग इन्द्रियों का अपने विशयों के साथ अनुचित संयोग मानसिक रोगों का कारण बनता है तथा **परिणाम**– इसका अर्थ मौसम व समय से है जो प्रतिकूल समय व मौसम कई तरह के रोगों का जन्मदाता बनता है। इसके अतिरिक्त अधर्म व दुराचार मनोरोगों का कारण बनता है।

योग ग्रन्थ में मनोरोगों का मूल कारण

मनोरोगों का मूल कारण यौगिक दृष्टिकोण से बहुत ही सूक्ष्मतम् व अत्यान्तिक है जो आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखता है। कहा भी गया है 'मन एव् मनुष्याणाम् कारण बन्धन मोक्षयो'। योग ग्रन्थों में आध्यात्मिक उन्नति हेतु मन का स्वस्थ्य होना अति आवश्यक है तथा मन के रोगों का मूल कारण पंच क्लेशों को बताया गया है।

अविधास्मितारागद्वेषभिनिवेशाः क्लेशाः (प.यो.सू. 2/3)

योग में मनोरोगों का स्वरूप और लक्षण की व्याख्या चित्तविक्षेप की संज्ञा देते हुये की गई है।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति भ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्तितत्वनि चित्ताविक्षेपास्ते ऽन्तरायाः। (प.यो.सू. 1/30)

मनश्चिकित्सा

आधुनिक तकनीकि युग में व्यक्ति के मानसिक बौद्धिक स्तर के विकास के साथ–साथ

रोगी मन की चिकित्सा का प्रश्न अत्याधिक गहराया है। मनःचिकित्सा यह एक आधुनिक चिकित्सा के रूप में उभरी है परन्तु इसका आधार अत्यन्त प्राचीन व विशिष्ट है। मानवीय अन्तराल में शक्तियों का विपुल भण्डार भरा पड़ा है पर मानसिक दुर्बलताओं के फलस्वरूप वह आत्मानुभव तथा अतिमानवी क्षमताओं का विकास नहीं कर पाता फलस्वरूप तृप्ति, संतुष्टि व शांति से वांछित मन रोग ग्रस्त हो उठता है। इस हेतु भारतीय ऋषियों, योगियों, महर्शियों ने इसकी निवृत्ति का मार्ग सुझाया है। मनः चिकित्सा मानव जाति के लिये विशेष रूप से आधुनिक युग में एक मूल्यवान विज्ञान है। इसका उल्लेख व विस्तृत विवरण हमारे प्राचीन ग्रन्थ **'अथर्वेद'** में मिलता है। यदि इन ग्रन्थों का उचित व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाये तो निश्चय ही आधुनिक मानसिक चिकित्सा में पर्याप्त सुधार किया जा सकता है। हंस जोकोब्स ने भारतीय मनःचिकित्सा पद्धतियों के उपयोग पर सुझाव देते हुये कहा है कि "हिन्दु धर्म एक गहरे समुद्र के समान है जितना अधिक आप अन्दर जायेगें उतनी ही अधिक सामग्री प्राप्त होगी"।

भारतीय प्राचीन ग्रन्थ अथर्वेद में असामान्यता से सम्बन्धित तथा मनः चिकित्सा पद्धतियों के संबंध में प्रचुर मात्रा में सामग्री उपलब्ध है। मनोवैज्ञानिक असामान्य व्यवहार को उसमें निहित मनोजात गुणों के आधार पर देखता है उसका उद्देश्य सामान्य बनाना होता है। वह मान के कल्याण के लिये कार्य करता है अथर्वेद का भी यही उद्देश्य है।

अथर्वेद के अनुसार शारीरिक रूप से मानव मस्तिष्क तीन तत्वों से मिलकर बना है—वात, पित्त, कफ या श्लेष्मा। यह तीन गुण जन्म से ही मानव शरीर में विद्यमान रहते हैं। जिनमें मात्रा का अन्तर होता है परन्तु यह शरीर को संतुलित करते हैं जब तक इन तीनों गुणों में समानता होती है तब तक शरीर सामान्य रहता है तथा कोई बीमारी उत्पन्न नहीं होती लेकिन जब इन गुणों में अधिकता या न्यूनता आती है तो विभिन्न प्रकार की बीमारियों का उद्भव होता है।

मानसिक व्यक्तित्व का निर्माण भी तीनों गुणों, वृत्तियों या विशेषताओं से होता है – सत्व, रजस, तमस यह गुण जन्म से व्यक्ति के मस्तिष्क व मानस में निहित होते हैं तथा इनमें परस्पर समानता होती है जिससे वे सामान्य व्यक्ति कहलाता है। रजस का अर्थ है अतिव्ययी आवेग। तमस सर्वाधिक खतरनाक गुण वाला माना जाता है क्योंकि दुष्टता, नीचे गिराना जैसी प्रवृत्तियां विद्यमान होती हैं। 'रजस' व 'तमस' में वृद्धि या न्यूनता आने पर अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जो कि मानसिक जीवन में असमान्यता ला देते हैं। अतः अथर्वेद के अनुसार व्यवहार में समान्यता तभी सम्भव है जबकि रजस और तमस एक निश्चित मात्रा में रहे परन्त मनुष्य जीवन पर्यन्त इन गुणों को एक निश्चित सीमा में बांधकर नहीं रख सकता।

विभिन्न विधियां मनोरोग की चिकित्सा हेतु वेदों में वर्णित है –

- मंत्रविधा
- संकल्प
- सादेश
- संवशीकरण
- कर्मकांडी उपचार
- ब्रह्म कवच : मनोवैज्ञानिक सुरक्षात्मक कवच
- देवीय एवं हवन तकनीक : आध्यात्मिकपचार

- प्राश्चित्ताणि

इसी प्रकार चरक ने दैहिक व मानसिक व्याधियों के विभिन्न कारकों को तीन प्रवर्गों में विभक्त किया है।

1. निज : वात, पित्त एवं कफ के व्यतिक्रम से उत्पन्न शारीरिक दोष।
2. आगन्तुज : बाह्य कारकों से उत्पन्न दोष
3. मानसिक : सत्व, रज व तम का असंतुलन।

चरक संहिता ने भेशजकी पर अधिक बल प्रदान किया है।

मनः चिकित्सा की यौगिक पद्धतियां

भारतीय योग पद्धति परम आनन्द व समृद्ध जीवन जीने की शैली है जिसमें विभिन्न चरणों में प्रथम शारीरिक व फिर मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है तत्पश्चात् ही आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव है। अतः इसमें ऐसी मनोदशा की संप्राप्ति होती है जहां मानवीय समस्यायें और व्याधियां तिरोहित हो जाती है। व्यक्ति की चेतना उस ऊर्ध्व तल पर अवस्थित हो जाती है जहां स्वाभाविक जीवन में जीवन में दुख से स्पर्श नहीं कर पाते। इस विचार से चिकित्सात्मक पक्ष की चर्चा करते हुये महर्षि पतंजलि जी ने कहा है।

योगाश्चित्तवृत्ति निरोधः (प.यो.सू. 1/2)

तथा मन के निरोध तथा मानसिक विकास हेतु साथ ही साथ व्यक्तित्व विकास हेतु पतंजलि योग सूत्र के (1/33) में कहा है –

मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविशयाणां भावनात् चित्तप्रसादनम्

चित्त वृत्तियों के निरोध से जीव को आत्मानुभूति होती है। वह अपने यथार्थ आत्मिक स्वरूप का प्रत्यक्ष करता है। फलस्वरूप उसमें मानसिक क्रांति होती है। इस हेतु पांतजल योग सूत्र में आष्टांग योग का वर्णन है।

यमनियमानसनप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यानसमाध्योऽष्टावङ्गानि।।**प.यो.सू.–2/29**।।

पतंजलि ने अपनी बातों को सूत्रबद्ध रखा है परन्तु आज योग में विस्तृत साहित्य उपलब्ध है। जैसे – मंत्रयोग, हठयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, लययोग इत्यादि। सैद्धान्तिक रूप से योग चिकित्सा वैज्ञानिक है तथा प्रकृति के नियमों पर आधारित है जिसका उपयोग पूर्ण रूप से मनः प्रशिक्षण के लिये किया जाता है। यह समस्त दुष्प्रवृत्तियों का नाश कर मूल प्रवृत्तियों व प्रेरणाओं का उन्नयन करने वाली पद्धति है। योग चिकित्सा पूर्णतः सैद्धांतिक व वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा व्यक्तित्व निर्माण के आधुनिक सिद्धांतों से संबंधित है। यह चिकित्सा चेतन अचेतन, अवचेतन तथा अतिचेतन समस्त स्तर पर चिकित्सा कर जीवन को उत्कृष्टता की ओर लेकर जाती है। मनोविज्ञान की भाषा में अतःकरण को ही सुपर चेतन कहा गया है। आध्यात्म शास्त्र में इसी अन्तराल को जीवात्मा का निवास स्थान कहा गया है। मनुष्य की व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने और उस पर अनुग्रह बरसाने वाला वरदान देने वाला जो ईश्वर है और जो प्रत्येक व्यक्ति के साथ रहता है वह इसी अन्तःकरण में बसता है। उसी की अनुकूलता, अनुकम्पा प्राप्त करने के लिये प्रार्थना, मंत्र, जप, अनुष्ठान से लेकर तप एवं योग साधनाओं का सृजन हुआ है।

मानसिक असंतुलन ही वर्तमान में अधिकतर रोगों के जन्म का कारण बन रही है तथा हमारे प्राचीन ग्रन्थों, वेद तथा यौगिक ग्रन्थों में मनः चिकित्सा का स्वरूप प्रकाश में आता है जिसे अंगीकार करने से अनेक समस्याओं का समाधान संभव है। मनः चिकित्सा में सबसे गहरी अंतिम परत ''सुपर चेतन'' यह एक उत्कृष्टता है जो योग द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. *योग दर्शन,* हरिकृष्णदास मोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर
2. योग और मानसिक स्वास्थ्य, सुरेश वर्णवाल, न्यू भारतीय बुक पब्लिकेशन, दिल्ली (2002)
3. नैदानिक मनोविज्ञान
4. चेतन, *अचेतन एवं सुपर चेतन मन,* पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, अखण्ड ज्योति, संस्कार, मथुरा (1998)
5. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्च स्तरीय साधनायें, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, अखण्ड ज्योति, संस्कार, मथुरा (1998)
6. *समाधि के चार सौपान,* स्वामी सत्यानंद सरस्वती, योग पब्लिकेशन, मुंगेर, बिहार, (1998)
7. आयुर्वेद का सैद्धान्तिक अध्ययन, वैद्य भगवान दाश, कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली